इकाई 22 अन्य पिछड़ी जातियां

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- अन्य पिछड़ी जातियां या वर्ग कौन हैं यह बता पाएंगे;
- अन्य पिछड़ी जातियों में आंतरिक विभेदन को स्पष्ट कर सकेंगे;
- अन्य पिछड़ी जातियों की मौजूदा रचना और उनका राज्यवार वितरण समझ पाएंगे,
- पिछड़ी जातियों के बारे में बता सकेंगे; और
- पिछड़े वर्ग के आंदोलनों और उनके राजनीतिक-आर्थिक उदय के बारे में बता सकेंगे।

22.1 प्रस्तावना

अन्य पिछड़ा वर्ग या जातियां एक संवैधानिक श्रेणी है जिसमें मुख्यत: सामाजिक रूप से पिछड़ी शूद्र जातियां आती हैं। पारंपरिक स्तरीकरण व्यवस्था के मध्यक्रम में स्थित जातियां इसकी घटक हैं। इस प्रकार यह द्विज और अछूत जातियों के बीच की मध्यवर्ती सामाजिक परत है। दूसरे शब्दों में यह गैर-अछूत हिन्दू जातियों का एक स्तर है, जो पारंपरिक सामाजिक स्तरीकरण में निम्न क्रम में स्थित हैं। यह एक विषम श्रेणी है जिसमें ऐसी अनेक प्रभावी जातियां शामिल हैं, जो सामाजिक और आर्थिक रूप से अनुसूचित जातियों/जनजातियों के समान वंचित हैं।

भारतीय समाज के ये तबके शिक्षा और व्यवसाय के क्षेत्र में पारंपरिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त जातियों या अगड़ों से पीछे हैं। हालांकि इन जातियों को अछूतों की तरह छुआछूत और सामाजिक पार्थक्य जैसी समस्याओं से कभी नहीं जूझना पड़ा है, लेकिन सवर्णों के सामने उनकी हीनता को परंपरागत रूप से विधिसम्मत माना जाता रहा है। प्रस्थिति जन्य अशक्तताएं इन्हें जन्म से मिलती थी, जो उनकी उन्नति और समृद्धि में बाधक बनी रहीं। गिने-चुने मामलों में कुछ अ-हिन्दू समुदाय भी इस श्रेणी में शामिल कर लिए गए हैं। मार्क गैलेंटर के अनुसार इस श्रेणी का स्वरूप हर राज्य में अलग-अलग है।

22.2 अन्य पिछड़ी जातियों में आंतरिक भेद

यह स्पष्ट है कि 'अन्य पिछड़ा वर्ग' की परिभाषा में जिन तबकों को शामिल किया गया है, वे समरूप नहीं है। उनमें स्पष्ट भेद कर पाना कठिन है। सवर्णों और अनुसूचित जातियों के बीच का होने के कारण समाज के इन तबकों में विविध सामाजिक-आर्थिक समुदाय शामिल हैं। इस विविधता के कारण इस तरह की सामाजिक संरचना बड़ी ढीली-ढाली होती है। इस श्रेणी की जातियां स्तरीकरण व्यवस्था में अलग-अलग स्थित रहती हैं और आर्थिक दृष्टि से भी वे विषम पाई जाती हैं। इनमें से कुछ चुनिंदा जातियां ही भूस्वामी हैं। इन तबकों में भूमि वितरण चुनिंदा जातियों के पक्ष में अधिक है, जिसके चलते इनमें अधिकांश जातियों के लोग गरीब और वंचित हैं। उनमें भी हाशिए के लोगों की वंचना उन्हें अन्य लोगों के लिए बटाईदारी करने, खेतिहर मजदूर बनने और पारंपरिक प्रकार्यात्मक सेवाएं प्रदान करने के लिए बाध्य करती है। डी.एल. सेठ के अनुसार इस श्रेणी में ऐसे वंचित समूह भी शामिल हैं जिनकी दशा कभी-कभी अनुसूचित जातियों से भी बदतर दिखाई देती है। इसमें उपरी स्तर भूधर कृषकों का है। उनके नीचे भूमिहीन, बटाईदार किसान, कारीगर और सेवादार जातियां आती हैं जो भूधर जातियों के आर्थिक और राजनीतिक नियंत्रण में रहती हैं। इन अन्य पिछड़ी जातियों में हाशिए की ये जातियां अतीत में उन लोगों के लिए बेगार, बंधुआ मजदूरी, घरेलू नौकर और कहार का काम करती रही हैं, जिन पर वे अपने जीवन-निर्वाह के लिए आश्रित थीं। तीज-त्योहारों पर जमींदार उनसे नजराने के रूप में नकदी इत्यादि वसूला करते थे।

22.3 राज्यवार वितरण

अन्य पिछड़े वर्गों के लिए गठित किए गए पहले आयोग के अनुसार अन्य पिछड़ी जातियों की जनसंख्या 3.8 प्रतिशत थी। पर दूसरे आयोग जिसे हम मंडल आयोग के नाम से जानते हैं, उसके अनुसार उनकी कुल जनसंख्या 52 प्रतिशत है। देश के विभिन्न राज्यों में पिछड़ी जातियों की संख्या इस प्रकार है:

क्र. सं.	राज्य	संख्या
1.	आंध्र प्रदेश	292
2.	आसाम	135
3.	बिहार	168
4.	गुजरात	105
5.	हरियाणा	76
6.	हिमाचल प्रदेश	57
7.	जम्मू और कश्मीर	63
8.	कर्नाटक	333

9.	केरल	208
10.	मध्य प्रदेश	279
11.	महाराष्ट्र	272
12.	मणिपुर	49
13.	मेघालय	37
14.	नागालैंड	0
15.	उड़ीसा	224
16.	पंजाब	83
17.	राजस्थान	140
18.	सिक्किम	10
19.	तमिलनाडू	288
20.	त्रिपुरा	136
21.	उत्तर प्रदेश	116
22.	पश्चिम बंगाल	117
23.	अंदमान और निकोबार द्वीपसमूह	17
24.	अरुणाचल प्रदेश	10
25.	चंडीगढ़	93
26.	दादरा नगर हवेली	10
27.	दिल्ली	82
28.	गोआ दमण और दिऊ	18
29.	लक्षद्वीप	0
30.	मिजोरम	5
31.	पांडेचेरी	260

स्रोत: **पिछड़ा वर्ग आयोग की रिपोर्ट (दूसरा भाग), 1980**

इन समूहों को वर्ग के रूप में लेना उचित नहीं होगा। असल में ये संवृत प्रस्थिति समूहों का समुच्चय हैं। प्रस्थिति या हैसियत इनमें विरासत में मिलती है, न कि उसे अर्जित किया जाता है। इस श्रेणी में एक ओर समृद्ध और दबंग जातियां तो दूसरी ओर गरीब और वंचित तबके भी शामिल हैं, क्योंकि पारंपरिक स्तरीकरण व्यवस्था में ये जातियां एक दूसरे के निकट हैं।

बोध प्रश्न 1

1) अन्य पिछड़ा वर्ग किसे कहते हैं, पांच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

2) सही या गलत बताइए:

अन्य पिछड़ी जातियों में शामिल समूह समरूप हैं:

सही ☐ गलत ☐

3) ओबीसी की श्रेणी में सबसे ज्यादा जातियां किस राज्य में शामिल हैं?

☐ कर्नाटक ☐ हरियाणा ☐ केरल

22.4 संस्कृतीकरण और सामाजिक गतिशीलता

स्तरीकरण व्यवस्था के मध्यक्रम में स्थित जातियां ऊंची जातियों के आचरण, उनकी विचारधारा और कर्मकांडों को अपनाकर गतिशीलता अर्जित करने में प्रयासरत रही हैं। मौजूदा स्तरीकरण व्यवस्था में अपना स्थान या दर्जा ऊंचा करने के लिए इन जातियों को अपनी हीनता के पारंपरिक चिन्हों, विशेषकर ऐसे चलनों को त्यागना पड़ता था, जिन्हें दूषक या गंदा माना जाता था। इस प्रकार की सांस्कृतिक गतिशीलता 'महान परंपरा' के ढांचे को पुष्ट करती थी। जाति क्रम-परंपरा में निम्न श्रेणी की जाति ऊर्ध्व गतिशीलता के प्रयास में ऊंची जातियों की जीवन-शैली और उनके आचरण की नकल करती है। पारंपरिक रूप से विधिसम्मत आरोपित या प्रदत्त सामाजिक क्रम में सांस्कृतिक और सामाजिक गतिशीलता की यह रणनीति संस्कृतीकरण कहलाती है। एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार यह ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें एक छोटी जाति पारंपरिक जाति क्रम-परंपरा में ऊंचा दर्जा प्राप्त करने के लिए ऊंची जाति की जीवनशैली का अनुकरण करती है। यह जाति क्रम-परंपरा के भीतर एक दर्जा हासिल करने के लिए दावा भर है। उसके ढांचे को बदलने या उसे तोड़ने की चुनौती नहीं।

यह प्रक्रिया समूहों के ऊंचा दर्जा या हैसियत हासिल करने की आकांक्षा और व्यवहार की दृष्टि से उसके लिए तैयार रहने के उनके प्रयास को दर्शाता है। इस तरह के दावे को पुष्ट करने के लिए ऐसी आविष्कृत गाथाओं, किंवदंतियों का सहारा लिया जाता है, जो यह दर्शा सकें कि अतीत में इन तबकों को समाज में ऊंचा दर्जा हासिल था। अध्ययनों से पता चलता है कि प्रस्थिति उन्नयन के लिए एक रणनीति के रूप में संस्कृतीकरण का चलन देश के विभिन्न भागों में पाई जाने वाली तमाम मध्यवर्ती जातियों में खूब हुआ। महाराष्ट्र की मराठा और *ढांगर*, बिहार की कुर्मी और यादव, गुजरात की कोली, पश्चिम बंगाल की कईबर्ता, कर्नाटक में लिंगायत और उड़ीसा में तेली जैसी जातियों ने प्रस्थिति उन्नयन या समाज में ऊंचा दर्जा पाने के लिए संस्कृतीकरण का मार्ग अपनाया।

सामाजिक बदलाव का यह देशज और संस्कृति विशिष्ट तरीका मध्यवर्ती जातियों में भी आर्थिक रूप से समृद्ध और राजनैतिक रूप से जागरूक तबकों ने खूब अपनाया। आर्थिक दशा में सुधार आने और राजनीतिक प्रभाव बढ़ने से छोटी जातियों ने जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी आनुपातिक उन्नयन की दिशा में प्रयास करने की प्रेरणा ली। श्रीनिवास के अनुसार संस्कृतीकरण के मार्ग पर चलने से पहले उस जाति समूह की आर्थिक दशा और राजनीतिक शक्ति में सुधार होना जरूरी है जो अपनी प्रस्थिति को ऊंचा उठाने की दावेदार हो। इस तरह की आकांक्षा हिन्दुत्व की महान परंपरा से घनिष्ठता की उपज है। क्रम-परंपरा में अपने आपको ऊंचा उठाने के लिए निम्न जाति के लोगों के लिए जरूरी था कि वे आर्थिक रूप से संपन्न, राजनीतिक रूप से दबंग और दृढ़ हों। यहां यह बात ध्यान रखी जानी चाहिए कि संस्कृतीकरण वर्ण-व्यवस्था में स्थान संबंधी परिवर्तन को सुगम बनाता है। यह उसमें ढांचागत बदलाव ओर नहीं ले जाता। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि "प्रतिष्ठा के पारंपरिक प्रतीकों" को हथियाने का प्रयास जब उन लोगों ने किया जो इसके अधिकारी नहीं थे, तो उसका विरोध उन लोगों ने किया अनुकरण के लिए जो इन जातियों के संदर्भ आदर्श थे। पर संस्कृतीकरण जब सापेक्षिक वंचना को कम नहीं कर पाया

तो इसकी चमक फीकी पड़ गई। द्विजों की प्रस्थिति का अनुकरण करने और उनका दर्जा पाने की आकांक्षा रखने वाली जातियों के बीच असमानता को कम करने के लिए यह युक्ति अप्रासंगिक हो गई। जो लोग अवसर के मौजूदा ढांचे में महत्वपूर्ण स्थान हासिल करना चाहते थे उनके लिए तुष्टि के प्रतीकों का कोई अर्थ नहीं रह गया। उनकी शांतिप्रद और मैत्री-पूर्ण काररवाइयों ने ऊंची जातियों के वर्चस्व को कोई चुनौती नहीं दी।

22.5 पिछड़े वर्ग के आंदोलन और उनका राजनैतिक-आर्थिक उदय

सामाजिक अन्याय के खिलाफ लड़ने वाले समाज सुधारकों के नेतृत्व में अ-ब्राह्मण जातियों का उदय एक महत्वपूर्ण घटना थी। ये समाज सुधारक मुख्यत: मध्यवर्ती जातियों के थे। यह एक ऐसी असमानता के चलन के खिलाफ दृढ़-निश्चयी प्रतिरोध का द्योतक था, जिसे न्यायोचित ठहराने की परंपरा बनी हुई है। सबसे पहले ज्योतिराव गोविंदराव फुले ने महाराष्ट्र में ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती देने के लिए बहुजन समाज की स्थापना की, जहां चंद ब्राह्मण राज्य के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक जीवन पर हावी थे। फुले स्वयं शूद्र थे। उन्होंने औपनिवेशिक शासन में ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती दी। वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध उनके आंदोलन ने सत्य, विवेक और समानता पर आधारित एक नई सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने अ-ब्राह्मण लोगों के धार्मिक संस्कारों में ब्राह्मणों की सेवाओं के बहिष्कार का अभियान छेड़ा। वे ब्राह्मणों को जन साधारण और ईश्वर के बीच अवांछित बिचौलिया मानते थे।

फुले द्वारा स्थापित सत्य शोधक समाज ने ब्राह्मण विरोधी आंदोलन को अपने कार्यक्रमों के माध्यम से संस्थागत रूप दिया। वे ब्राह्मणवाद को धूर्त और स्वार्थी मानते थे, जिसकी भर्त्सना उन्होंने एक ऐसे असहाय अधिरोपण के रूप में की जिससे जाति क्रम-परंपरा में ऊंची जातियों का वर्चस्व बना रहे। इस आंदोलन की रीढ़ मुख्यत: दबंग किसान जातियां थीं जो कांग्रेस की समर्थक थीं। मगर निम्न जातियों के शोषण की जो व्याख्या महात्मा फुले ने दी, उसमें उन्होंने उसके आर्थिक और राजनैतिक पहलू को छोड़ दिया। इस शोषण की व्याख्या उन्होंने मुख्यत: संस्कृति और जातीयता के धरातल पर की। इसीलिए उन्होंने ब्राह्मणवाद से पहले प्रचलित धार्मिक परंपरा को फिर से अपनाने पर जोर दिया। उन्होंने भारतीय किसानों और दिहाड़ी मजदूरों के शोषण का विरोध किया। उनके अनुसार संगठन और शिक्षा इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जरूरी थे। इस तरह के विद्रोही स्वर देश के अन्य भागों में भी उठे।

22.5.1 आत्मसम्मान आंदोलन

ब्राह्मणों के वर्चस्व को तोड़ने के लिए दक्षिण भारत में अन्य पिछड़ी जातियों और अछूतों ने आत्म-सम्मान आंदोलन छेड़ा। अपने शैशवावस्था में इस आंदोलन में समाज सुधार की प्रवृत्ति थी, जो ब्राह्मणों के आनुष्ठानिक वर्चस्व और सांस्कृतिक महत्ता को चुनौती दे रही थी। परंतु शीघ्र ही यह आंदोलन जातिगत राजनीति के दलदल में फंस गया, जिसका मुख्य उद्देश्य अंग्रेजों के प्रति अपनी निष्ठा के बदले में उनसे तरह-तरह की रियायतें और लाभ बटोरना बन गया। इस तरह के सरोकार के चलते यह आंदोलन स्वतंत्रता संग्राम का विरोधी हो गया, जिसे यह ब्राह्मणों का सरोकार मानता था। इस आंदोलन की शक्तियों ने तमिलनाडू के उन 'चुनिंदा' ब्राह्मणों को अपने हमलों का निशाना बनाया, जो राजनीति, नौकरशाही और उच्च व्यवसायों पर काबिज थे। ब्राह्मणों से हावी सामाजिक व्यवस्था में अपने लिए कोई सम्मानजनक स्थान हासिल नहीं कर पाने के कारण समाज के गैर-ब्राह्मण तबकों ने ब्रिटिश शासकों की सहायता और प्रोत्साहन से निम्न जातियों को बहुत बड़े पैमाने पर संगठित करके 1920 में सत्ता पर कब्जा कर लिया। सत्ता हासिल करते ही आंदोलन के नेताओं ने वर्चस्व के अन्य क्षेत्रों में भी अपनी उपस्थिति को बढ़ाने के लिए कारगर कदम

उठाए। इस आंदोलन का फैलाव सभी तमिल जनपदों तक था। इस के कार्यकर्ताओं में जाति क्रम-परंपरा में निम्न जातियों के लोग भी शामिल थे। इस आंदोलन में अछूतों ने भी बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया, जो इसके प्रति खासा आकर्षित थे। जीवन के आनुष्ठानिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर ब्राह्मणों की जकड़ से मुक्ति पाने के लिए समाज सुधार आंदोलन के रूप में शुरू हुए इस आंदोलन ने अपनी शक्ति को औपनिवेशिक शासकों और रियासतों से पिछड़े वर्गों के लिए रियायतें और आरक्षण जुटाने में लगाई, जिसके बदले में वह स्वतंत्रता संग्राम के विरोध में खड़ा हो गया। राजनीतिक प्रतिनिधित्व प्राप्त करने में सफल होने के बाद आंदोलन ने पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों में आरक्षण की मांग उठाई।

परंतु आंदोलन के नेतृत्व ने कालांतर में अपना ध्यान मध्यवर्ती और छोटी जातियों के हितों की साधना पर केन्द्रित कर अछूतों को उनके हाल पर छोड़ दिया। छोटी जातियों की इस तरह की आकांक्षाओं को बाद में कांग्रेस से भी समर्थन मिलने लगा जो अपने दल में गैर-ब्राह्मण जातियों को शामिल करके अपने जनाधार को बढ़ाना चाहती थी। बहरहाल दक्षिण भारत में चले गैर-ब्राह्मणवादी आंदोलन में देश के अन्य भागों में हुए आंदोलनों की अपेक्षा तालमेल अधिक था।

22.5.2 कर्नाटक का प्रजामित्र मंडल

कर्नाटक में दबंग भूधर जातियों के संगठनों ने ब्राह्मणों के वर्चस्व को तोड़ने के लिए प्रजामित्र मंडल का गठन किया। इस पहल से जो शक्तियां उभरीं उनके दबाव के फलस्वरूप लोक सेवाओं में गैर-ब्राह्मण लोगों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने के लिए कदम उठाए गए। प्रजामित्र मंडल के टूट जाने के बाद उसकी जगह प्रजापक्ष ने ले ली, जिससे मध्यवर्ती जातियों और खासकर वोक्कालिगाओं और लिंगायतों की स्थिति और मजबूत हुई। स्वतंत्रता के पश्चात ये दोनों जातियां राज्य की राजनीति में प्रमुख शक्ति के रूप में उभरी। मगर सत्ता के ढांचे में सबसे प्रभावशाली स्थिति लिंगायतों ने बनाई। सो देश की आजादी के बाद पिछड़े वर्गों के इर्द-गिर्द जो सत्ता उभरी उसने भूधर किसानों के हितों के लिए गंभीर कदम उठाए। जमीन को जमींदार ब्राह्मण जातियों से उन लोगों को हस्तांरित करने के लिए कानून पारित किए गए, जो वास्तव में जमीन कमाते थे। जमीन कमाने वाले लोग मुख्यत: मध्यवर्ती जातियों के थे। कर्नाटक के ब्राह्मणों को अपने गांवों से पलायन कर सफेदपोश नौकरियां ढूंढनी पड़ीं। पर इसके फलस्वरूप जो सत्ताधिकार या शक्ति संतुलन बना वह भी छोटी पिछड़ी जातियों के उदय से छिन्न-भिन्न हो गया, जो शक्तिशाली मझोली या मध्यवर्ती जातियों के वर्चस्व के विरोध में उठ खड़ी हुई। असल में ओबीसी में जो जातियां सत्ता में इस वर्चस्व का हिस्सा नहीं बन पाईं, वे भी संगठित होकर सत्ता की दावेदार बन गईं।

22.5.3 आंध्र और केरल के आंदोलन

आंध्र-प्रदेश में भी ब्राह्मणों का विरोध हुआ। पारंपरिक और उभरते सामाजिक स्तरीकरण में अभिजात वर्ग के रूप में ब्राह्मणों को जो स्थान मिल रहा था, उसके कारण कई जातियों के लोग अवसर के ढांचे से दूर हाशिए पर चले गए। सो जो जातियां कृषि में आई व्यावसायिक क्रांति से लाभान्वित हुई थीं वे ब्राह्मणों के खिलाफ उठ खड़ी हुई, जिन्होंने पहले पुरानी व्यवस्था को बनाए रखा था और फिर अब नई व्यवस्था में भी सत्ता हथिया ली थी। छोटी जातियां ब्राह्मण अभिजातवर्ग की श्रेष्ठता या वर्चस्व को चुनौती देने लगी। इन जातियों को पारंपरिक स्तरीकरण व्यवस्था में अन्य छोटी जातियों का समर्थन मिला। इन लोगों ने भी कांग्रेस के स्वराज (होमरूल) का विरोध किया क्योंकि वे इसे एक ऐसे आंदोलन के रूप में देखती थीं जो पुरानी व्यवस्था को बनाए रखने के लिए किया जा रहा था। ब्राह्मणों के वर्चस्व को लेकर आशंकित होने के कारण इन गैर-ब्राह्मण वर्गों ने विशाल आंध्र आंदोलन का विरोध किया जो मद्रास प्रेसीडेंसी के तेलुगु भाषी लोगों के लिए एक पृथक

राज्य प्राप्त करने के उद्देश्य से उठाया गया था। मगर यहां भी मुट्ठीभर अ-ब्राह्मण समृद्ध किसान जातियां हावी हो गईं जो अपने से छोटी जातियों के हितों को लेकर चलने की इच्छुक नहीं थी। सो अन्य छोटी जातियां भी अलग से अपने हितों की पैरवी में जुट गईं। स्वतंत्रता से पहले हुए मुन्नुरु दापा और पदमासली आंदोलन इस तरह के दावों का उदाहरण हैं। स्वतंत्रता के बाद आरक्षण पाने के लिए पिछड़ी जातियों ने अपने संगठनों का विलय कर लिया। वंचितों की इस प्रायोजित गतिशीलता के बावजूद नौकरशाही में ब्राह्मणों का वर्चस्व अभी खत्म नहीं हो पाया है और दबंग कृषक जातियों ने आर्थिक शक्ति और राजनैतिक पैंतरेबाजी के बूते अपने व्यापक प्रभाव को बनाए रखा है।

उधर केरल में बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही इझावा जाति के लोगों ने सवर्णों के वर्चस्व के विरुद्ध मझोली जातियों के आंदोलन का नेतृत्व किया। एक ओर अंग्रेज शासकों की विस्तारवादी नीति के तहत सवर्णों खासकर नायर जाति के लोगों ने संसाधनों को हथियाआ, तो दूसरी ओर ईसाई मिशन ने शिक्षा और सहायता देकर अनुसूचित जातियों का सशक्तीकरण किया। इससे राज्य में सबसे ज्यादा जनसंख्या वाली इझावा जाति के लोगों को लगा कि वे वंचित रह गए हैं। इसलिए डा. पल्पू के नेतृत्व में उन्होंने भी नौकरशाही और नौकरियों में अपना वाजिब प्रतिनिधित्व हासिल करने के लिए आंदोलन किया।

22.5.4 उत्तर-प्रदेश में अन्य पिछड़ी जातियां

उत्तरी भारत में मध्यवर्ती जातियां या ओबीसी उतने दबंग तरीके से नहीं उभर पाईं। भारत की सांस्कृतिक कर्मभूमि समझा जाने वाले उत्तर प्रदेश में ब्राह्मणवाद ने अपनी सत्ता को परंपरा के सहारे बनाए रखा। इस काल में जो भी जातिगत संगठन अंतरजातीय सौहार्द और एकता बनाने के लिए खड़े किए गए वे कभी-कभार सवर्णों की ज्यादातियों के खिलाफ भी बोलते थे। उदाहरण के लिए यादव महासभा के वार्षिक अधिवेशन में ऊंची जातियों के विरोध में बोला जाता था, जिन्हें वे शोषक और अपनी उन्नति में बाधक मानते थे। मध्यवर्ती जातियों में जो लोग समृद्ध और प्रभावशाली थे। उन्होंने समाज में अपना दर्जा ऊंचा करने के लिए संस्कृतीकरण का मार्ग चुना। इस स्तर की जातियों में स्तरीकरण व्यवस्था में ऊंचा स्थान प्राप्त करने के लिए मची आपसी होड़ उस एकता की राह में रोड़ा बन गई जो एक असरदार आंदोलन के लिए जरूरी थी। बहरहाल स्थितियां ओबीसी के उत्थान के प्रतिकूल बनी रहीं। कारगर ढंग से संगठित नहीं होने के कारण वे कोई सार्थक उपलब्धि हासिल नहीं कर पाईं। फलस्वरूप मध्यवर्ती जातियां स्वतंत्रता के शुरुआती वर्षों में उन समीकरणों से बंधी रहीं जिनमें सवर्ण जातियां हावी थीं। पर कालांतर में हरित क्रांति और उसके बाद चौधरी चरणसिंह जैसे नेताओं के नेतृत्व में अन्य पिछड़ी जातियों के राजनैतिक शक्ति के रूप में उभरने के बाद यथास्थिति को बनाए रखने वाला यह शक्ति संतुलन टूटा। पिछड़ी जातियों में जो भी एकता और बंधुता उभरी उसका आधार ऊंची जातियों के साथ समानता हासिल करने की दिशा में किए जाने वाली पहल है। पर सामंजस्य और संगठन के अभाव में ऐसी आकांक्षाएं पूरी नहीं हो पाई हैं।

22.5.5 बिहार में अन्य पिछड़ी जातियां

उधर बिहार में अन्य पिछड़ी जातियों में अभिजात वर्ग ने संस्कृतीकरण का मार्ग अपनाकर अपनी पारंपरिक सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाया। कुर्मियों और यादवों में खासकर जो तबके समृद्ध और जागरूक थे उन्होंने अपने समाज को सुधारने और अपनी दशा में सुधार लाने के लिए दबाव डालने के लिए जाति संगठन बनाए। त्रिवेणी संघ के तत्वावधान में शक्तिशाली मध्यवर्ती जातियों को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास भी किया गया। यह संगठन यादवों, कुर्मियों और कोइरियों का महासंघ था। पर इस तरह की पहल का कोई सार्थक प्रभाव नहीं रहा क्योंकि उन्हें ऊंची जातियों के नेताओं से कोई समर्थन नहीं मिला, जो सत्ता की धुरी में थे। स्वतंत्रता संग्राम में जिन नेताओं ने जन-जन को लामबंद किया

था उन्होंने अपने जातिगत हितों को ध्यान में रखते हुए इन्हें अनदेखा करना श्रेयष्कर समझा, क्योंकि ऐसा नहीं करने पर समाज के इन तबकों को जो भी राहत या रियायतें दी जातीं वे निश्चित ही उनके जातिगत हितों के विरुद्ध जाती।

बिहार की किसान सभाओं ने भी बटाईदारं किसानों को मध्यवर्ती किसान जातियों के शोषण से मुक्त कराने का घोषित इरादा छोड़ दिया, क्योंकि उनका सवर्ण नेतृत्व इसके विरोध में था। इस तरह के संगठनों के संकीर्ण नजरिए ने इस मुद्दे से आंखें फेर लीं। बहरहाल स्वतंत्रता और भूमिसुधार की दिशा में किए गए कुछ उपायों ने मध्यवर्ती जातियों के उदय के लिए उर्वरक भूमि तैयार की। उधर जमींदारी के उन्मूलन के बाद ऊंची जाति के जमींदारों का वर्चस्व खत्म हो गया। मझोली संपन्न जातियों ने नौकरशाही और अन्य व्यवसायों में अधिक प्रतिनिधित्व पाने के लिए प्रयास किए। सामाजिक-आर्थिक विकास ने उनके सामाजिक उत्थान, आर्थिक समृद्धि और राजनैतिक विकास में सहायता की। संस्कृतीकरण को गतिशीलता के माध्यम के रूप में प्रयोग करना उनमें रुक गया। मगर पारंपरिक स्तरीकरण व्यवस्था में श्रेणी श्रेष्ठता के आग्रह को एक प्रभावशाली सरोकार के रूप में अभिव्यक्ति नहीं दी गई। सो अन्य पिछड़े वर्ग के आंदोलन की विचारधारा में मुख्य थीम सापेक्षिक वंचना का विरोध रहा।

22.5.6 शिक्षा और मूल्य

पिछड़े वर्गों में समतावादी मूल्यों के प्रसार और शिक्षा का स्तर ऊंचा उठने से वे न्यायोचित अपेक्षा और यर्थाथ के बीच मौजूद नकारात्मक विसंगति के बारे में जागरूक बनी। अपनी प्रबल राजनैतिक हैसियत का एहसास होने पर इन जातियों ने समदृष्टि से संसाधनों के वितरण के लिए संघर्ष छेड़ा। नौकरशाही तिकड़मों के जरिए संपन्न सवर्ण जातियों के हित में संसाधनों के हस्तांतरण का इन्होंने कड़ा विरोध किया। इसके फलस्वरूप मझोली जातियों का जो उदय हुआ, उसने उन समीकरणों को ध्वस्त कर दिया जो पारंपरिक रूप से ऊंची जातियों के वर्चस्व के पक्ष में जाते थे। इन शक्तियों का उदय मध्यवर्ती जातियों के हित में संसाधनों, अवसर और प्रतिष्ठा के वितरण की रणनीति की स्वीकारोक्ति है। मगर मझोली जातियों में इन तबकों की स्थिति संसाधनों पर अधिकार के मामले में अच्छी नहीं है। बहरहाल पारंपरिक स्तरीकरण व्यवस्था के मध्यक्रम में जो दबंग भूधर किसान जातियां सवर्ण-बहुल राजनैतिक दलों की पिछलग्गू थीं वे आज सत्ता की धुरी बन गई हैं।

बोध प्रश्न 1

1) ज्योति राव फुले और बहुजन समाज पर पांच पंक्तियों में एक नोट लिखिए।

....

....

....

....

....

2) कर्नाटक में जातिगत संगठनों के प्रभाव के बारे में पांच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

3) उत्तर प्रदेश में ओबीसी की दशा के बारे में बताइए। वे दृढ़ क्यों नहीं हैं? पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

22.6 जाति, वर्ग और सत्ताधिकार

इस प्रकार अ-ब्राह्मण जातियों के आंदोलनों ने एक ऐसी प्रक्रिया का सूत्रपात किया जिसने आगे चलकर वंचितों और अपवर्जितों को एक सामूहिक पहचान दी। बढ़ते आर्थिक विभेदन ने निम्न जातियों के लोगों को एक समूह के रूप में उभरने में सहायता की जिससे कि वे अवसर के ढांचे में अपने हिस्से के लिए दावा जता सकें। प्रस्थिति के ढांचे में ऊंची जातियों जैसा दर्जा पाने की आकांक्षा ने संख्या में अधिक और अभिव्यक्ति में सक्षम मझोली जातियों को शुरू-शुरू में संस्कृतीकरण का मार्ग अपनाने के लिए प्रेरित किया। पर अपनी निर्धारित स्थिति को ऊंचा उठाने में असमर्थ रहने और अवसर के उभरते ढांचे में अपने प्रतिनिधित्व को बढ़ाने की आकांक्षा के फलस्वरूप अन्य पिछड़े वर्ग या ओबीसी में ऐसे नेतृत्व का जन्म हुआ जो सुशिक्षित, संपन्न था और संस्कृतीकरण के जबर्दस्त विरोधी था। इसके फलस्वरूप निम्न जाति के हिन्दू एक स्वतंत्र राजनैतिक श्रेणी के रूप में उभरे। वर्चस्व के पारंपरिक केन्द्रों का विरोध शक्तिशाली ग्रामीण जातियों ने किया जो खुद दबंग थीं। इन जातियों ने और अन्य राज्यों की ऐसी ही मझोली प्रबल जातियों ने जब सत्ताधिकार के ढांचे में ऊंचा दर्जा हासिल कर लिया तो उन्होंने अपनी जैसी उन जातियों को छोड़ दिया जो हाशिए में थी। सत्ता में उनके आरोहण से हाशिए के इन लोगों को कोई लाभ नहीं पहुंचा। इसलिए ओबीसी में दबंग जातियों को अलग करने के लिए उन्होंने उनसे संबंध तोड़कर उपेक्षित और हाशिए की मझोली जातियों को विशेष रियायतें और सुविधाएं प्रदान किए जाने की मांग की। बहरहाल सत्ता के मौजूदा ढांचे में निर्बल और हाशिए के वर्गों के लिए कोई स्थान नहीं है।

22.7 सारांश

भारतीय संविधान के प्रावधानों के अंतर्गत राज्य से अन्य पिछड़ी जातियों समेत तमाम सभी निर्बल वर्गों की समस्याओं की ओर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा की जाती है। सरकार को यह जिम्मेदारी दी गई है कि इन वर्गों की रक्षा के लिए प्रावधान करे ताकि वे उन लोगों से स्पर्धा कर सकें जिनकी स्थिति मजबूत रही है और जिनकी गतिशीलता जन्म से मिली वंचना के कारण पंगु नहीं रहती। उनके उत्थान के लिए अनुसूचित जातियों, जनजातियों और ओबीसी के लिए सरकारी नौकरियों में दिया गया आरक्षण ऐसा ही प्रावधान है। इसके अलावा स्कूलों, कॉलेजों और उच्च शैक्षणिक व्यावसायिक संस्थानों में भी उनके बच्चों के लिए सीटें आरक्षित रखी गई हैं। सकारात्मक भेदभाव के ये उपाय वंचितों को अधिक अवसर उपलब्ध कराने के लिए किए गए हैं, ताकि साधन संपन्न लोग अपनी स्थिति का अनुचित लाभ नहीं उठा सकें।

22.8 शब्दावली

वर्चस्व : यह संख्यात्मक, आर्थिक और राजनैतिक महत्ता है।

ओबीसी : पारंपरिक क्रम-परंपरा में निम्न क्रम में स्थिति जातियां (अन्य पिछड़ा वर्ग)

संस्कृतीकरण : यह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें निम्न जाति ऊर्ध्व गतिशीलता प्राप्त करने की दृष्टि से ऊंची जाति के गुणों और जीवनशैली की नकल करती है।

22.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सत्यमूर्ति, टी.वी. (संपा) 1996, *रीजन, रिलीजन, जेंडर एंड कल्चर इन कंटेम्परेरी इंडिया,* दिल्ली ऑक्सफर्ड यूनि. प्रेस

पनंदिकर पई, वी.ए. (संपा) 1997, *द पॉलिटिक्स ऑव बैकवार्डनेस,* नई दिल्ली कोर्णाक पब्लिशर्स

जेलियट, ई. 1992, *फ्रॉम अनटचेबल टू दलित,* नई दिल्ली मनोहर

22.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अन्य पिछड़ी जातियां (ओबीसी) एक संवैधानिक श्रेणी हैं, जिनमें सामाजिक रूप से वंचित शूद्र जातियां शामिल हैं। वे असल में द्विज और अछूतों के बीच की मध्यवर्ती सामाजिक परत हैं।

2) गलत

3) कर्नाटक

बोध प्रश्न 2

1) ज्योति राव फुले ने सबसे पहले महाराष्ट्र बहुजन समाज का गठन करके अल्पसंख्यक ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती देने का प्रयास किया था। फुले ने अ-ब्राह्मण लोगों के अनुष्ठानों से ब्राह्मणों को अलग रखने के लिए आंदोलन छेड़ा।

2) कर्नाटक में शक्तिशाली पिछड़ी जातियों के संगठनों ने प्रजामित्र मंडल के परचम तले ब्राह्मणों के विरुद्ध आंदोलन किया। उनके सफल आंदोलन के फलस्वरूप नौकरशाही और राजनीति पर ब्राह्मणों की पकड़ कमजोर हुई।

3) उत्तर प्रदेश में मध्यवर्ती जातियां या ओबीसी मजबूती से नहीं उभरी। मझोली जातियों ने ऊर्ध्व गतिशीलता के लिए संस्कृतीकरण का मार्ग अपनाया। स्थितियां मध्यवर्ती जातियों और उनके आंदोलन के लिए प्रतिकूल रहीं। यह स्थिति स्वतंत्रता तक बनी रही, जिसके बाद कुछ राजनेताओं ने स्थिति को बदलने का प्रयास किया।